ओ३म्

अंड तथा अंत्रवृद्धि चिकित्सा

लेखक—

वैद्य कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए०

बांदा सी० पी०

प्रकाशक—

...कित्सक पं० विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज.

...मवार ...१०० | सन् १९२१ | कीमत ।) आना

... विश्वेश्वरदयालु के प्रबन्ध से श्रीहरिहर प्रेस, बरालोकपुर इटावा में मुद्रित।

10
5.

॥ ओ३म् ॥

अंड तथा अंत्रवृद्धि चिकित्सा।

संक्षिप्त रोग विवरण—इस रोग में अण्ड या फोते बड़े होजाते हैं। कारणपरत्व से इसके अलग २ नाम है। वातादि दोषोत्पन्न वृद्धि (अण्ड वृद्धि) को अङ्गरेजी में "आरकायटीस" (Orchitis) और अरबी में "वरमउलउन्सियेन" कहते हैं "मूत्रज वृद्धि" को अङ्गरेजी में "हाइडरोसील" (Hydrocele) तथा अरबी में "किलतुलमेआ" रक्तजवृद्धि को अङ्गरेजी में "हिमटोसिल" (Haematocele) तथा अरबी में "फितक-सलहम" और अन्त्र वृद्धि को अङ्गरेजी में "हर्निया" तथा अरबी में "फितकउलअमआया" कहते हैं। संस्कृतमें सामान्यतः सबको "वृद्धि" ही कहते हैं।

आयुर्वेदमतानुसार इसकी संप्राप्ति इस प्रकार है—शरीर में अकारण सेकुपित वात, अधो गामी होकर जब वंक्षण (बस्ती के नीचे और जांघ के ऊपर) से होते हुए वृषण या अण्डकोष में प्राप्त होता है तब वह वहां पर शोथ तथा वेदना को उत्पन्न कर,

वृषणों की गांठों तथा ऊपर की त्वचा या थैली में रक्त वहन करने वाली धमनियों को दूषित कर देता है, एवं वृषण के दोनों ओर या एक ही ओर वृद्धि (Enlargement of the scro. tum) होजाती है ×।

दोषास्त्रमेदो मूत्रान्त्रै वृद्धिः सप्तधागदः ।

अर्थात्—इस व्याधी के सात भेद हैं वातादि भेदों से तीन प्रकार की, रक्त से चौथी, मेद से पांचवीं, मूत्र से छठी और अन्त्रज सातवीं है। इनके अलग २ लक्षण माधवनिदानादि ग्रंथों मे भली भांति वर्णित है। वे यहां बिस्तार भय से नहीं लिखें जासकते। तथापि पश्चात्यमतानुसार संक्षेप में, दोनों का तुलनात्मक दिग्दर्शन कराना हमेंअभीष्ट हैं।

आयुर्वेद में वातादि दोषज वृद्धि के जो लक्षण दर्शाये हैं, वे प्रायः सब पाश्चात्य वैद्यक के "आर्कायटिस" (Orchitis)

× "क्रुद्धोनूर्ध्वगतिर्वायुः शोफ फूल कर श्चरन्।
कुक्षौ वंक्षणतः प्राप्य फलकोषाभिवाहिनीः ॥
प्रपीड्य धमनी वृद्धि करोति फल कोषयोः।" मा० नि०
अथवा—वृद्धिं करोति कोशस्थः फलकोषाभिवाहिनीः।
कक्षा रुद्ध गतिर्वायुर्धमनी मुष्कगामिनीः।" भा० प्र०

से मिलते हैं। "आर्कायटिस" नामक वृद्धि रूक्ष होती है, (यह वातका लक्षण है) वृषणों में मंद अभिताप अर्थात् (Chronic-in flammation) "क्रानिक् इन्फ्लेमेशन" (यह पित्त का लक्षण है) होता है वृषणान्तर्गत रक्त धमनियां फूल उठती है एवं मुष्कों पर सोजा या शोथ हो आती है वृषण का वर्ण लाल होजाता है, पैरों में तथा कमर में चोसनवत पीड़ा होती हैं। शरीर में ज्वर चढ़ आता है, जो मिचलाया करता है, तथा कभी २ कय भी हो जाती हैं। यह बिकार दोनों अण्डकोषों में होता हैं, किन्तु प्रायः दाहिने अण्डकोष में बहुतायत से देखा जाता है; इत्यादि, कौन कह सकता है कि ये लक्षण आयुर्वेदीय दोषज वृद्धि के लक्षणों से मेल नहीं खाते ? देखिये—

वातपूर्ण दृति स्पर्शो रूक्षो बाताद हेतुरुक् ।
पक्वोदुम्बर संकाशः पित्ताद्दाहोष्म पाकवान् ॥
कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डूमान् कठिनोऽल्परुक्॥

अर्थात—बात की वृद्धि में वृषणकोष, वायू से भरी हुई पखाल जैसे हाथों को लगते हैं, रूक्ष होते हैं, तथा अकारण या स्वल्प कारण से ही वेदना करते हैं। पित्त की वृद्धि में पके हुए गूलर के फल समान लाल, ज्वर को करने वाली × तथा दाह,

× ज्वरदाहोष्मवतां चाशु समुत्थानपाकां पित्तवृद्धिमाचक्षते ।
सुश्रुत

जलन, पाकादि पित्त के लक्षणों से युक्त और हाथों को गरम २ मालूम देती है। कफ की वृद्धि हाथों को शीतल मालूम देती है भारी (वजनदार) चिकनी, खुजली युक्त तथा अल्प पीड़ा वाली होती है।

केवल फर्क इतना ही है कि आयुर्वेद में सूत्र रूपसे, बड़ी खूबी के साथ वे ही लक्षण अलग २ दोषानुरूप :दर्शाये गये हैं जो कि पश्चात्य वैद्यकने "आर्कायटीस„ नामक एक ही पिटारी में भर दिये हैं।

रक्तज वृद्धि (Haemtocele) के विषय में पाश्चात्य वद्यक का मत है कि इस रोग में अन्दर विकृत रक्त का संचय होता है, और यह बड़ा त्रासदायक है। कबूल है, इसी से तो आयुर्वेद भी कहता है—"कृष्णस्फोटा वृतः पित्तवृद्धि लिङ्गश्च रक्तजः" अर्थात विकृत रक्त के कारण जो "वृद्धि" होती है वह काले फोड़ों से व्याप्त तथा "पित्तवृद्धि के लक्षणों से यु[illegible] होती है।

मेदजन्य वृद्धि को पाश्चात्य वैद्यक Elephantiasis of Scrotum अर्थात् वृषणान्तर्गत श्लीपद रोग मानता है। उसका कथन है कि हाथ, पांव शिश्न आदि स्थानों जब श्लीपद होता है तब जिस प्रकार जमी हुई चरबी या मेदा के समान कुछ भाग

नजर आता है, उसी प्रकार वृषण में भी दिखाई पड़ता है इसी से हम इसको वृषण का श्लीपद कहते हैं। अच्छा; आप भले ही उसे श्लीपद कहें या और जो चाहें सो कहें परन्तु आयुर्वेद इसे श्लीपद नहीं मान सकता क्यों कि "सकण्डुरं-श्लेष्मयुतं श्लीपदं विविर्ज्यम्" ऐसा आयुर्वेद का सिद्धात है, और मेदजन्य वृद्धि में-"कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्ताल फलोपम:" कफजन्य वृद्धि के लक्षण खुजली आदि होती हैं अतएव उसे श्लीपद कहने से असाध्य मानना पड़ेगा किंतु "मेदजन्य वृद्धि" को आयुर्वेद असाध्य नहीं मानता और दूसरा कारण यह है कि श्लीपद प्राय: पत्थर के समान (शिलावत पदं श्लीपदमिति) कड़ा होता है, और "मेदजन्य वृद्धि" तो "मृदु" अर्थात मुलायम होती है। "तालफलोपम:" से उसके कड़ाई का बोध नही होता: उससे केवल उसके वर्ण तथा आकार का बोध होता है जैसा कि विजयरक्षित जी ने लिखा है—"तालफलोपम इति पक्व ताल फलमिव नील वर्तुला" अर्थात् परिपक्व ताल के फल समान वह नीले वर्ण की और गोल होती है।

अब "मूत्रजवृद्धि" के विषय में संक्षेप से विचार करेंगे आयु र्वेद कहता है—

मूत्रधारण शीलस्य मूत्रजः सतुगच्छतः ।
अम्भोभिः पूर्ण दृतिवत् क्षोभं याति सुरुङ् मृदुः ॥
मूत्रकृच्छमधः स्याच्च चालयन फल कोषयोः ॥

अर्थात्—जो मनुष्य मूत्र के वेग को रोकता है: उसे मूत्रज वृद्धि होती है। यह मूत्र वृद्धि चलते समय' जलसे भरी हुई मसक के समान बोलती है। पीड़ा युक्त तथा कोमल होती है, वेदना मूत्रकृच्छ के समान होती हैं, फल और कोष दोनों इधर उधर को हिलते हैं।

पाश्चात्य वैद्यक इसे ही (Hydrocele) "हायडरो सील" अर्थात् "जल जन्य वृषण वृद्धि" (Dropsy of the-scrotum) कहता है। उसका कथन है कि जिस प्रकार उदर में विकृत जलके सञ्चय से जलोदर (Ascites) सिर में सञ्चित होने से जल जन्य शीर्ष वृद्धि (Hydrocephalus) छाती में सञ्चय होने से जलज वक्षो वृद्धि (Hydrothorax) और समस्त शरीर में सञ्चय होने से जलज शरीर वृद्धि (Ana-sarca) इत्यादि वृद्धियां होती है, उसे हम उपरोक्त "हायडरो सील" नाम देते है।

इस वृद्धि में वृषण कोपान्तर्गत त्वचा से, एक प्रकार का रक्त.लसिकाक्षिरस करती है, तथा वही फिर शिमिट २ कर प्र

त्रित होती है। जैसे २ इस जल सदृश लसिकाका सञ्चय बढ़ता-जाता है तैसे २ वृषणों का आकार भार आदि बढ़ता जाता है, यह रक्त लसिका जलके समान अथवा मूत्रके समान होती हैं इसीसे कदाचित् आयुर्वेद में इस वृद्धिको मूत्रज वृद्धि कहा हो। यह कल्पना डा० गरदे महाशयकी है। किन्तु इस विषयमें हमारी प्रमाण युक्त सरल कल्पना यह है कि जो मनुष्य अपने मूत्र के वेगों को रोक रखता है (मूत्र धारण शीलत्व) अथवा जिसके वृषणों में किसी प्रकारकी चोट पहुंच जाती है, उसके वृषणों में रुके हुये मूत्रकी उष्णता से अथवा चोट जख्म आदिकी उष्णता से वृषण स्थित रक्तवाहिनी नलि काओं से उपरोक्त मूत्र सदृश लसिकाका स्राव अत्यधिक होकर यह वृषण वृद्धि होती है, अतएव स्पष्ट कार्य्य कारण के सम्बन्ध से ही इसे आयुर्वेद में "मूत्रज वृद्धि" कहते हैं।

इस प्रसिद्ध हायडरोशील या मूत्रज वृद्धिमें, लसिकाका सञ्चय अधोभाग से प्रारम्भ होकर ऊपर २ बढ़ता जाता है इसीसे प्रायः इसका आकार भाले के जैसा होता है। यह वृद्धि हाथों को नरम मुलायम मालूम देती है, इस में कुछ विशेष पीड़ा या वेदना नहीं होती, किन्तु वजन दार या भारी होजाने पर रोगी को बेचैन कर देती है।

अब "अन्त्रवृद्धि" के विषय में भी विचार करना अत्यावश्यक है अपने निदानादि ग्रंथो में लिखा है—

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ।

धारणेरण भाराध्व विषमाङ्ग प्रवर्तनै ॥

क्षोभणैः क्षोभितोऽन्यैश्च क्षुद्रांत्रावयवं यदा ।

पवनो विगुणी कृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥

कुर्याद्वंक्षण संधिस्थो ग्रंथ्याभंश्वयथुं तदा ।

अर्थात्—वात प्रकुपित करनेहारे आहारों के सेवन से, शीतल जल में घुस कर स्नान करने से, आये हुए मल मूत्रादिक वेगों को रोकने से और नहीं आये हुए, उनके वेगों को बलपूर्वक प्रवर्तन करने से, बहुत बोझा को उठाने से, अधिक चलने से, अङ्गों की विषम चेष्टायें (टेढ़े या तिरछे होकर अङ्गो को हिलाबादि) बलवानके साथ कुश्ती या भारी धनुषादि पदार्थों को उठाने से, इत्यादि कतिपय कारणों से अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हुई वायु छोटी आंतों के प्रदेश को दूषित कर, उनको स्वस्थान से नीचे ले जाती है। जब वे नीचे वृषण और कोषकी संधियों में पहुंच जाती है, तब वहां गांठ जैसी सूजन उत्पन्न होजाती है। इसे ही अन्त्रवृद्धि कहते हैं। आगे

और भी इसके विषय में लिखा है कि यदि इस अन्त्रवृद्धि की उपेक्षा की जावे, अर्थात शीघ्र ही इसकी चिकित्सा न की जाय तो यह अन्तड़ी अण्डकोषों में प्राप्त होकर, तहां वृद्धि को करती है, उस समय पेट में अफारा, मलावरोध तथा बढ़े हुए वृषणों में पीड़ा और शरीर का जकड़न ये लक्षण होते हैं। इस वृद्धि को हाथ से दबाने पर गुर २ या गुड़ २ शब्द करते हुए अन्तड़ी अन्दर को पैठजाती है और छोड़देने पर फिर पूर्ववत अंडकोषको फुलाकर उसी में प्राप्त होजाती है। जैसा कि लिखा है—

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मान रुक्स्तंभवती सवायुः।
प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः॥

माधवनिदान

यहां पर यह बात ध्यान रखने लायक है कि आयुर्वेदीय-मतानुसार अन्त्रज वृद्धि और मूत्रज वृद्धि दोनों वात के ही कारण से होती है। केवल उत्पत्ति के हेतु अलग २ हैं। अर्थात् मूत्र संधारणादि से कुपित हुआ वात मूत्रज वृद्धि करता है, और भारहरण, विषमांग प्रवर्त्तनादि से कुपित वायु अन्त्रज वृद्धियां "हर्निया" (Hernia) को करता है। जैसा कि लिखा है—

मूत्रांत्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् ।

अन्त्र वृद्धि में वृषणांतर्गत अण्ड या ग्रन्थी (गुठली) में किसी प्रकारका सोजा या (Inflammation) वगैरः नहीं होता है, और जो वेदना होती है, वह सदैव नही होती, किन्तु जब होतीहै तब बड़ी असह्याय होती है। इसकी उत्पत्ति पाश्चात्य वैद्यक के अनु सार बड़ी मनोरंजक है गर्भ स्थित बालक के ५ पांचवे मास में, वृषण की गोलियां वृषणों में उतरती है। किसी २ का मत है कि ५ या ६ मा० हो जाने पर ये गुठलियां उदरगह्वर से बस्तिगह्वर में आती है फिर ७ वें मास में कमर के सामने, और ८ वें मास में अपने वृषण स्थान में उतर पड़ती है। ये ग्रन्थियां जिस मार्ग से या छिद्रों से होकर उतरती है वे छिद्र कुछ काल के पश्चात बन्द हो जाते हैं, किन्तु किसी २ के शरीर में वे छिद्र बरा बर बन्द न होकर, कुछ खुले से रह जाते हैं. ऐसे मनुष्य या मनुष्यों के अधिक भारवहन, विषमांग प्रवर्तन, कांसने आदि चेष्टाओ से (इन कारणों से वात प्रकुपित होने के कारण) वे छिद्र और भी बड़े हो जाते है, तथा उन्हीं के द्वारा, काल पाकर, बड़ी अन्तड़ियों का (अथवा छोटी अंत ड़ियों का भी) कुछ भाग नीचे उत्तर कर, सरल मार्ग से वंक्षण

संधि से होते हुये वृषणो में प्रवेश कर जाता है। ऐसी स्थिति में जब उन छिद्रों में आकुंचन की क्रिया होती है (क्योंकि संकोचन प्रसरणादि क्रियायें अपने शरीर के प्रत्येक भाग में हुआ ही करती है) तब उन अन्तड़ियों में दबाव के पड़ने से अत्यन्त वेदना होती है। एक वार वृषणों में उत्तर आई हुई अन्तड़ी के भाग को, फिर से पूर्ववत् दाब कर ऊपर चाढ़ना बड़ा मुश्किल का काम है। तथापि उष्ण जल में बैठा कर अथवा वृषणों पर वर्फादिका प्रयोग कर छिद्रों के मार्ग में जो उस पर फांसी सी बैठती है वह ढीली की जा सकती है, तथा अन्तड़ी के उस भाग को कुछ संकुंचित कर, युक्ति पूर्वक ऊपर को चढ़ाया भी जा सकता है। किंतु यदि उपरि निर्दिष्ट फांसी या दबाव अधिक जोर का हो, और चिकित्सा करने में अत्यधिक बिलम्ब होगया हो तब तो शस्त्र क्रिया करना ही अधिक उपादेय होता है।

अन्त्रवृद्धि के तीन प्रकार देखने में आते हैं-(१) एक तो वह है, जिसमें उतरी हुई अन्तड़ी का भाग दबाने से धीरे २ गुड़ २ शब्द करते हुए ऊपर को चला जाता है। रोग की इस प्रथमावस्था में पट्टा (Truss) वगैरः बांधने से, रोग धीरे २

दुरुस्त हो सकता है। (२) दूसरी अवस्था वह है जिसमें वह भाग ऊपर को नहीं चढ़ाया जा सकता। पेट में शूल, चूसग-वत् पीड़ा, आध्मान्, मलबद्धता इत्यादि नाना प्रकार के उपद्रव खड़े हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में, उस अन्तड़ी को ऊपर स्व-स्थान में पहुंचाने का प्रारंभिक उपाय तो करना ही चाहिये, किंतु साथ ही साथ, उसमें सोजा न आने पावे इसका भी इलाज करते रहना चाहिये। रोगी को अल्पाहार करना चाहिये तथा पड़े रहना चाहिये, इधर उधर घूमना या खड़े रहना एकदम बन्द करदेना चाहिये। (३) तीसरे प्रकार में, वह अन्तड़ी ऊपर तो नहीं जाती है प्रत्युत् उसका कुछ भाग, वंक्षण संधि के अभ्यन्तर छिद्रों में दृढ़ता के साथ अटक जाता है, तथा अत्यन्त वेदना को करता है। कोई इसी को "ब्रध्न" या बद कहते हैं। इस अवस्था में अन्तड़ी का वही स्थान अग्र भाग सूज उठता है, तथा पूर्णतया छिद्रों में फंस जाता है। उदर में विशेष कर आध्मान, शूल होता है दस्त की हाजत होती है, किन्तु दस्त नहीं उतरता या बहुत ही कम होता है। दिन में कई बार वमन होते हैं। पहिले आमाशय स्थित सब आहार मुख द्वारा बाहर निकल पड़ता है फिर अम्ल तथा तिक्त ऐसा पित्त

निकलता है फिर कुछ श्वेत पदार्थ (कदाचित् वह रस हो) निकलता है बाद में मल की समान दुर्गन्धित पदार्थ निकलता है-अर्थात् पुरीषावरोधजन्य उदावर्तके प्रायः सब लक्षण इसमें दिखाई पड़ते हैं ×।

पश्चात् वृषण या वंक्षण स्थित सोजा पत्थर के सदृश कड़ा हो जाता है किन्तु धीरे धीरे बढ़ता ही जाता है रोगी का चेहरा काला पड़ जाता है, वमन बन्द नहीं होते, रोगी को किसी प्रकार चैन नहीं पड़ती, वह निराश हो जाता है। नाड़ी की गति मन्द किन्तु रह रह कर चपल होतीहैं। हिक्काय भी अपना जोर अलग बतलाती हैं।

कुछ काल के पश्चात् वह सूजन या गांठ कुछ श्याम वर्ण की होती है, वेदना कुछ शमन हुई सी जान पड़ती है, रोगी की जीवनाशा कुछ पल्लवित सी होती है कि तुरन्त ही यमराज उसका समूल नाश कर देते हैं।

अन्त्रवृद्धि का प्रकार स्त्रियों में भी होता है; किन्तु उनके यह जांघ या वंक्षण में ही होती है। जिसे हम "ब्रध्न" या

×"आटोप शूलौ परिकर्त्तिकाच संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः।
पुरीष मास्यादथवा निरेति पुरीष वेगेऽभिहते नरस्य॥"

"कुरण्ड" कह सकते हैं। यह "ब्रध्न" नामक रोग मनुष्यों को भी होता है और आजकल दूषित स्त्रियों के संसर्ग से ही इसकी उत्पत्ति मानी जाती है प्रचलित भाषा में इसे "बद" कहते हैं यह उपदंशजनित मानी जाती है। किन्तु ध्यान रहे कि उपदंश-जनित ब्रध्न (बद या बाघी) शीघ्र ही चिकित्सा करने से पक जाती है. किन्तु अन्त्र वृद्धि जनित पकती नहीं और उपदंश-जनित बाघी स्त्रियों को नहीं होती अंत्रवृद्धि जनित बाघी स्त्रियों को होती है।

अपने यहां "वृद्धि" रोग दूषित स्त्री के संसर्ग से भी माना गया है ÷ और "ब्रध्न" रोग, वृद्धि जिस स्थान में होती है अर्थात् वृषण के समीप ही वंक्षण में होती है (जैसा कि भाव मिश्रजी का कथन है—"अथ ब्रध्न स्यापि वृद्धि सामीपोत्पन्न त्वादत्रतन्निदान लक्षणमाह") और जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं, अन्त्रवृद्धि से इसका खास सम्बन्ध है, अतएव "ब्रध्न" के विषय में केवल आयुर्वेद की ही सम्मति का संक्षेप में विचार कर, चिकित्सा का विचार करेंगे।

÷ दुष्टदारा विहाराश्च वातो बस्ति गतो भृशम् ॥
अंडस्थानं च संप्राप्य तस्य वृद्धि करोतिवै ॥ हारीत

बंगसेन जी का मत है कि यदि बाघी में व्यथा न हो तो उसे केवल "कुरण्ड" कहना चाहिये, अन्यथा उसे "ब्रध्न" कहना चाहिये।

यथा—"निर्व्यथंच कुरंडं स्याद्ब्रध्नं भवति सव्यथम्।
अयमेवानयोर्भेदो ह्यन्यत्सर्वं समं तथा॥

अन्य मतसे, तथा हमारे मतसे भी "कुरण्ड" का "ब्रध्न" से कुछ सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। "कुरंडं" केवल "अण्ड" या वृषण संबन्धी "वृद्धि" या "हायडरोसील" को ही कहना युक्त होगा। विजयरक्षित जी तथा श्रीकंठदत्त जी ने श्री मा० निदान के टीका में लिखा है-'वृद्धिः कुरण्डोऽभिधीयते" वृद्धिः कुरण्ड" इतिलोके" ॥

"ब्रध्न" रोगके विशेष लक्षण ये हैं—ज्वर, सूजन में अत्यंत पीड़ा और अङ्गो में दाह अशक्ति तथा ग्लानि होती है। अङ्गरेजी में इसे (Bubonocele) ब्यूबोनोसील और अरबी में। बदन काना" कहते हैं।

एक शिरा और बातशिरा—अण्डवृद्धि सम्बन्धी ये दो रोग और है। कहा जाता है कि पूर्णिमा या अमावश्या अथवा दशमी और एकादशी तिथि में विशेषकर [illegible] कोष वृद्धि

होती है इसमें कंप और संधि समूह अथवा सर्वांग में वेदना इत्यादि लक्षणों से युक्त प्रबल ज्वर, रोगी को चढ़ आता है किन्तु २-३ दिन बाद वह स्वयं दूर होजाता है। इस में कभी २ एक ही ओर के कोष में वृद्धि या सुजन होती है जिसे एक सिरा और दोनों ओर वृद्धि हो तो बात शिरा कहते हैं।

अब क्रमानुसार सब की सरल द्रव्य चिकित्सा आगे दीजाती है।

(१) अद्रख—आर्द्रक या अदरख (म०-आलें) विशेषकर रूक्ष और वात तथा कफ नाशक होने से, इस रोग पर इसका अच्छा उपयोग होता है। वातकी वृद्धि शीघ्र दूर होती है।

अदरख का स्वरस २ से ३ मासा तक एक मात्रा शहद डालकर, नित्य सवेरे सेवन करे। एक मास के अन्दर लाभ होता है। यथा प्रमाण-"आर्द्रकस्य रसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातजित्"

(२) आक-(आकड़ा, मदार या रुई)-विशेषतः कृमिनाशक, कफ नाशक और ग्राही होने से, इसका भी उत्तम उपयोग इस रोग पर होता है।

आक के पत्ते २ भाग में शुद्ध सेंधानमक १ भाग एकत्र कर, सिल पर महीन पीस, थोड़ा गरम कर सुखोष्ण लेप

करने से अण्डवृद्धि शांत होती है। और फिर कभी नहीं होती। जैसा कि कहा है।

मर्दयित्वार्कपत्रैस्तु तापितं चाकसैन्धवम्।
तेन लिप्तं शमं याति कुरंडं न पुनर्भवेत्॥

(३) आम्र—आम्र के पेड़ में जो गांठ हो उसे ले आवे। उस गांठ को गौ मूत्र में घिस कर गाढ़ा २ लेप, बढ़े हुए अण्ड पर कर देवे, और ऊपर से खूब सेंके। यह योग शं० दा० पदेजी का बताया हुआ है।

(४) इन्द्रायन (इन्द्रवारुणी, सं०—कावंडल) यह तीव्र रेचक, कृमिनाशक, उष्णवीर्य होने से कफनाशक और लघु। इ०—गुण संपन्न होने से वृद्धि का नाशक है।

(अ) इन्द्रायन के जड़ के चूर्ण को, गाय के दूध में पीस कर, यथोचित प्रमाण से एरण्ड (अण्डी या रेंडी) का तेल मिलाकर सवेरे केवल ७ दिन पर्यन्त पान करने से अण्ड वृद्धि रोग नष्ट होता है। यह अनुभूत योग है शास्त्र में भी लिखा है।

गन्धर्व तैल संमिश्रं विशाला मूलजं रजः।
क्षीरेण पीतं सप्ताहाद्वृद्धिं हन्ति न संशयः॥

(आ) छोटे बालकों की अन्त्रवृद्धि या कुरंटक रोग (देखो-
नीचे नोट ३) पर भी इन्द्रायन अच्छा काम देता है। योग
उपरोक्तानुसार ही देना चाहिये। यथोक्तं—

इन्द्रवारुणिकामूलं तैलं पुष्करजं तथा।
संमर्घ च स गोदुग्धंपिवेज्जंतुः कुरंटके॥

वृ० नि० रत्नाकर

(इ) थोड़े ही दिन की हुई अण्डवृद्धि अथवा कुरण्ड इस उप-
रोक्त इन्द्रायन के योग से केवल तीन दिन में ही भाग
जाती है। जैसा कि लिखा है।

वातारितैल मृदितं सुरवारुणीजं।
मूलं नरः पिवति योमसृणं विचूर्ण्य॥
गव्ये निधायपयसि त्रिदिनावसाने।
तस्य प्रणश्यति कुरंड कृतो विकारः॥

वृ० नि० रत्नाकर

(४) एरण्ड (अण्डी या रेंडी) विशेष गुण—उष्ण, शूल,
सूजन, अफरा तथा आमवात नाशक है।

(अ) अण्डवृद्धि से पीड़ित रोगी को चाहिये कि नित्य
सबेरे, यथोचित प्रमाण में, एरण्डी का तैल दूध में

डालकर पीवे। इसकी मात्रा का प्रमाण १ तोला से २ तोले तक है। यदि इसका तैल पीते समय उबकाई आती हो और पिया न जाता हो तो तैल पीने के पहिले छाछ के २-३ कुल्ले कर लेने से तैल का अरुचि कर स्वाद कुछ भी नहीं मालूम होता। रोज दोनों शाम इसी तैल की मालिश अण्ड पर करे, एक मास तक। इस प्रकार इसका सेवन करने से लाभ अवश्य होता है।

"सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्ड संभवम्"

"सिद्धौषधिप्रकाश" में लिखा है—"दुग्ध में एक तो० एरण्ड तैल ३० दिन सेवन करने से वायुकी अन्त्रवृद्धि जावे" (यहां "अन्त्रवृद्धि" के स्थानमें अण्डवृद्धि होना चाहिये क्योंकि 'अन्त्रवृद्धि' तो वायु के कारण से ही होती है, पित्त और कफ की अन्त्रवृद्धि नहीं होती है। और उपरोक्त योग वात की अण्डवृद्धि पर जितना लाभ पहुंचता है, उतना अन्त्रवृद्धि पर कदापि नहीं पहुंचाता है।

(आ) यथोचित प्रमाण से, श्वेत एरण्ड के तैल में, सहत मिलाकर पीने से अण्डवृद्धि, अपची और ग्रन्थि

दूर होजाते हैं। यथा प्रमाण—

कुरण्डमपचीं पित्तग्रन्थि च हरति क्रमात्।
मधु मिश्र सितैरण्डं तैलं पीतं च मात्रया॥

हितोपदेश वैद्यक

(उ) एरण्ड के तैल में शुद्ध गूगल (१ मासे से ३ मासे तक) मिलाकर तथा उसमें थोड़ा गोमूत्र डालकर नित्य सवेरे पान करने से बहुत दिनों की अण्डवृद्धि (विशेषकर वात की) तत्काल नष्ट होती है। यथा प्रमाण—

गुग्गुलं रुबु तैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः।
वात वृद्धि निहंत्याशु चिरकालानु बंधिनीम्॥

वृ० नि० रत्नाकर

इस प्रयोग के सेवन से अन्त्रवृद्धि (Hernia) भी नष्ट हो सकती है।

(ई) एक या दो तोला एण्डी के तैल में उतना ही गोमूत्र मिलावे, और फिर उसमें शुद्ध पारा और गन्धक की कज्जली १ से ४ रत्ती तक (बलावस्थानुसार) अच्छी तरह घोलकर सवेरे सेवन करने से शीघ्र अण्डवृद्धि का नाश होता है। यथोक्तं—

गोमूत्रैरण्ड तैलाभ्यां रस गन्धक कज्जली।
पीत्वा निहंति सहसा वृद्धि वृषण संभवाम्।

नि० रत्नाकर

(उ) श्वेत एरण्ड की जड़, टेंट् (श्योनाक, अरलू) की जड़, हरड़, बहेड़ा, आमला और वच इन सबको सम भाग लेकर, कांजी में पीस कर लेप करने से अण्ड-कोषों की पीड़ा दूर होती है।

श्वेतैरण्ड शिफामूलं टिंटुका त्रिफला वचा।
कांजिकापिष्ट मेतस्य लेपोयं मुष्कशूलहृत्॥

हितोपदेश वैद्यक

(ऊ) एक या दो तोला एरण्डी के तैल में इन्द्रायन की जड़ का चूर्ण २ मासा मिलावे, फिर उसमें गाय का घी एक तोला और दूध आधपाव मिलाकर नित्य सवेरे पान करने से अत्यन्त दुस्तर अण्डवृद्धि रोग नष्ट होता है।

देखिये प्रमाण—

विशालायाः शिफा चूर्ण मेरंड तैल मर्दितम्।
गव्याज्य पयसा पीतं कुरंडं हन्ति दारुणम्॥

हितोपदेश वैद्यक

(ए) श्वेत एरण्ड के तैल २ तोला में, हरड़ का चूर्ण २ मासा मिलाकर, मन्दाग्नि पर थोड़ा पका लेवे, फिर उसमें गोमूत्र ५ तोला मिलाकर पान करने से रोगी रोग मुक्त होजाता है। यथा—

पथ्याचूर्णैः सितैरण्ड तैलं दक्वं निषारयेत् ।
कंपं वृषण वृद्धिं च पीतं गोमूत्र संयुतम् ॥

रोगी को कंप, जो कि विशेषकर वातवृद्धि में कभी देखा जाता है वह भी इस योग के सेवन से दूर होजाता है।

(ऐ) एरण्ड का तैल १ या २ तोला में हरड़, बहेड़ा आमला, अरलू, दन्ती की जड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, नील की जड़, और अडूसा इन १० द्रव्यों का समभाग से किया हुआ महीन चूर्ण १॥ से ३ मासे तक डालकर सवेरे चन्द रोज पीने से, अण्डवृद्धि दूर होती है। अनुभूत है। प्रमाण देखिये—

त्रिफला टिंटुका दन्ती त्रिकटुर्नीलिकावृषा ।
भुक्तमेरण्डतैलेने चूर्णमेषां कुरण्डहृत् ॥ हि० वैद्यक

(५) करञ्जा (सं०–कंटकरञ्ज, कुबेराक्षी इ० । म०–सागरगोटा) कृमिनाशक, उष्णवीर्य, आदि इत्यादि गुण विशिष्ट होने से अण्डवृद्धि पर बहुत अच्छा काम पहुंचाता है।

(अ) करञ्ज की मींगी निकाल कर, जल के साथ सिल पर पीसकर तथा थोड़ा गरम कर वृद्धि पर लेप कर देने से, वृद्धि कम हो जाती है।

अथवा—चांवल के धोवन में, करञ्ज की जड़ को घिसकर लेप करने से भी बहुत कुछ फायदा होता है-यथा प्रमाण—

तंदुल वारि विमिश्रं घृतपुर संज्ञमुच्यते लोके ।
तन्मूल पिष्ट लेपं कुरण्ड गलगण्डयोः कुर्यात् ॥

नि० रत्नाकर

(आ) करञ्ज फल को आग में भून कर, चूर्ण कर लेवे, १ मा० चूर्ण दिनमें २ वार, १ तो० घी के साथ खाने से तथा साथ ही (अ) में कहा हुआ लेप करने से वृद्धि, शोथ, वेदना अत्यन्त शीघ्र दूर होती है।

(६) गन्धाविरोजा (सरल का रस) उष्णवीर्य, कृमिनाशक कफनाशक तथा शोफनाशकादि गुणों से युक्त होने से वृद्धि पर अनुभूत है।

एक अच्छे महीन तथा मजबूत कपड़े पर गन्धाविरोजा लेपकर तथा उसे किंचित् उष्ण कर, वृषण वृद्धि पर

चिपका देवें और ऊपर से लंगोट कस लेवे। १ या २ दिन में ही वृद्धि उतर जावेगी, दर्द रफा हो जावेगा।

यदि वृषण पर मामूली शोथ या सोजा होगा, और वह कच्ची दशा में होगा तो गन्धाबिरोजा के उपरोक्त प्रयोग से वह बैठ जावेगा और यदि सोजा पकगया होगा तो तत्काल फूट कर बह जावेगा सूजन उतर जावेगी। हमारा यह कई वार का अनुभव किया हुआ है। पाठकों को मालूम होगा कि गन्धाबिरोजा से ही तारपीन का तैल बनाया जाता है जो सूजन और दर्द को शमन करता है।

(७) गेहूं की जड़—गेहूं (गोधूम) की जड़ का चूर्ण २ मा० भेड़ के दूध में पीस कर, किंचित् उष्ण कर लेप करने से अवश्य ही अण्डवृद्धि दूर होती है प्रमाण—

गोधूम मूलिका चूर्णं मेषी दुग्धेन मर्दितम्।
उष्णेन ते न लिप्तो वा कुरण्डो नश्यति ध्रुवम्॥

हि० वैद्यक

(८) गोबर का रस निकाल कर (गोबर ताजा होना चाहिये) कांजी मिलाकर, उसमें कूट जीरा डालकर घोटे, पश्चात् (कुछ उष्ण कर) लेप करने से अत्यन्त दुस्तर अण्डवृद्धि भी दूर होजाती है, ऐसा शास्त्रकार का कथन है यथा—

गोमयस्य रसोन्मिश्रं कांजिकेनाति मर्दितम्।
कुष्ठं जीरं प्रलेपेन कुरंडं हन्ति दुर्वहम् ॥

हि० वैद्यक

(६) तमाखू—करजुआ (करञ्ज) की मींगी (मगज) एरण्ड के तैल में खरल कर, उसे तमाखू के पत्ते पर लेपकर, वृषण पर बांध देवे। थोड़ी ही देर में जी मिचलावेगा और कय भी हो जायगी यदि घबराहट अधिक हो तो बांधा हुआ छोड़ डाले, पुनः थोड़ी देर में बांधे। इस प्रकार दिन में २। ३ बार बांधे और छोड़े। १। २ दिनमें ही अपूर्व लाभ होगा।

अथवा—तमाखू और कली का तेज चूना, एकत्र कर, गो-मूत्र के साथ खरल करें। फिर उसका लेप वृषण पर करें, और सुहाता २ सेंक करें थोड़ी देर में उपरोक्ता नुसार कय वगैरह होना सम्भव है। किन्तु एक या दो दिन में ही इसका चमत्कार दिखाई देता है साधारण वृषण वृद्धि तो तत्काल शमन होजाती है, इस प्रयोग से मूत्रजवृद्धि (Hydrocele) भी नष्ट होते देखी गई है आभ्यंतरिक शिराओंका संचित विकृत जल बाहर निकल पड़ता है, किन्तु पूर्णतया रोग

दूर होने के लिये, एक बात और करनी पड़ती है-जब उपरोक्त प्रयोग से, वृषण के अन्दर का जल किसी प्रकार बाहर निकल जावे तब तुरन्त ही पुन्नाग (सुलतानी चम्पा) के वृक्ष की अन्दर छाल, गोमूत्र के साथ सिल पर खूब महीन पीस कर तथा किञ्चित उष्ण कर, वृषण लेप करना चाहिये और ऊपर से पट्टा कस देना चाहिये, इस पट्टे को ३ दिन तक नहीं खोलना चाहिये। कोई २ इस पट्टे को ८-१० दिन तक बांधे रहने की सम्मति देते हैं।

अथवा—साधारण दोषजन्य वृषण वृद्धि पर, कई वैद्य तम्बाखू के पत्ते पर शिलारस चुपड़ कर बांध देते हैं अथवा केवल तमाखू का पत्ता बांधने को कह देते हैं। इससे भी कम ज्यादा लाभ होता ही है।

(१०) दारुहल्दी—उष्णवीर्य, कफनाशक; तथा नाना प्रकार के त्वचा दोषों को हरन करने वाली है. इसके और हल्दी के गुण समान हैं। अण्डवृद्धि पर इसका इस प्रकार शास्त्रोक्त प्रयोग किया जाता है—दारु हरिद्रा का चूर्ण १॥ या २ मा० गो० मूत्र ५ तो० के साथ मिलाकर सबेरे और शाम पीने से कुछ दिनों में वृद्धि दूर हो जाती है। यथा—

"दार्वीचूर्णं गवां मूत्रेर्निपीतं मुष्क वृद्धि जित् ।"
नि० रत्नाकर

(११) निर्गुण्डी (सम्हालु) अत्यन्त वातहारक है। वृषण वृद्धि पर इसका यों प्रयोग करना चाहिये । निर्गुण्डी के पत्ते जल के साथ सिलपर पीस कर तथा किञ्चित् उष्ण कर; वृषण पर बांध देवे; शीघ्र ही वात की वृषण वृद्धि शमन हो जावेगी ।

अथवा—किसी हांड़ी में निर्गुण्डी के पत्ते भरकर आगपर धर देवे; जब वह मटकी खूब लाल हो जाय तब आग पर से उतार कर उसके अन्दर के गरम २ पत्ते; सुहाते २ वृषण पर बांध देवे। इससे से भी वातजन्य वृषण वृद्धि उतर जाती है।

अथवा—किसी चौड़े मुँख के पात्र में; निर्गुण्डी के पत्ते धर कर उसमें सब पत्ते बूड़ जावें इतना जल डालकर; आगपर चढ़ा देवे तथा पात्र का मुंख ढांक देवे जब खूब जल खौलने लगे तब रोगी के वृषणों पर उसका बफारा या वाष्प स्नान कराने से रोग शीघ्र हीं जड़ मूल से नष्ट हो जाता है।

(१२) बच—बच का चूर्ण १ तो० में सेंधानमक १ तो० और घी ३ तो० मिलाकर तथा अग्नि पर गरम कर वृषण पर प्रलेप करने से अण्डवृद्धि शांत होती है ७ दिन में फायदा होता है।

सैंधवं सर्पिषा पक्वे क्षिप्त्वा उग्रांच धारयेद् ।
सप्ताहमेतद्योर्ले पात्कुरण्डो गच्छति ध्रुवम् ।

(१३) भारङ्गी—उष्ण, वीर्य, सूजन, घाव, कृमि दाह आदि नाशक है अण्डवृद्धि पर इसका शास्त्रोक्त प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—भारंगी की जड़ चावलों के धोवन में पीस कर गाढ़ा गाढ़ा लेप करने से कुरण्ड गण्डमाला आदि रोग नष्ट होते हैं।

सुपेषितं ब्राह्मण यष्टिकाया मूलं समं तंदुल धावनेन ।
निहन्ति लेपाद्गल गण्डमाला कुरण्ड मुग्धान खिलान् विकारान् ॥

(१४) भिलावा (भल्लातक) गरम, ग्राही, फूल, शोफ, तथा कृमी नाशक आदि गुण सम्पन्न होनेसे अण्डवृद्धि पर अच्छा काम करता है। भिलावा (फल) और हल्दी समभाग एकत्र कर थोड़े से जल के साथ पीसकर वृषण पर लेप कर

देवे और गोबरी (कंडे) की आंच से सेंके।

अथवा—भिलावे के पत्ते दो भाग और हल्दी १ भाग लेकर थोड़े से जल के साथ सिलपर पीसकर और किंचित उष्ण कर वृषण पर लेप करे। इस प्रकार ७ दिन करना चाहिये अवश्य फायदा होता है।

(१५) रास्ना—"रास्नोष्णा वात शोथामवात वातामयाञ्जयेत्"

शोडल नि०

अर्थात्—रास्ना गरम है; बात, सूजन, आम बात तथा ८० प्रकार के बात रोगों को नष्ट करती है। इसका उपयोग अंत्रवृद्धि और विशेष कर बात जन्य वृषण वृद्धि पर रामबाण होता है।

रास्ना, मुलहठी, गिलोय, एरंडमूल, पटोलपत्र रेणुका बीज खिरेंटी और अडूसा इन ८ द्रव्यों को समभाग लेकर (कोई २ वैद्य रास्ना २ भाग तथा शेष द्रब्य एक २ भाग लेते हैं) जब कूट चूर्ण कर लेवे। १॥ तोला चूर्ण लेकर किसी मटकी में पाव भर जल के साथ डालकर अष्टमांश काढ़ा तयार कर लेवै छान लेवे और उसमें १ मासा चित्रक का चूर्ण तथा एरंडी का तैल मिलाकर सवेरे सेवन

करे। यह मात्रा बड़े मनुष्य की है रोगी की अवस्थानुसार इसमें फेर फारकर सकते हैं यह उत्कृष्ट योग है हमारा कई बार का अनुभूत है। इसका शास्त्रोक्त प्रमाण भी देख लीजिये।

रास्ना वत्सृय मृतैरंड पटोलं रेणुका बला।
वृषःस्यात्कथितो वृद्धिं हन्याच्छित्रक तैलवान्।

नि० रत्नाकर

(१६) लज्जालु (छुई मुई लाजवती) शीतल, सूजन, दाह, रक्तविकार, आदि नाशक है। इंडियन प्लांट्स एण्डड्रग्स नामक ग्रन्थ में इसके मूल के विषय में लिखा है।

The root ofthe plant Contains a peculiar tanin. Itis Cousiberd as resolvent and alterative usefulin diseurcs arising from Corrupt blood and bile.

अर्थात—लज्जालू की जड़ में एक विचित्र ग्राहक शक्ति है। यह द्रावक एवं शोथ हत है और शरीर के किसी विशिष्ट भाग में किसी प्रकार का भी फेर फार न करते हुये विकृत दोषों को निकाल कर पूर्ववत् स्थिति

में ले आने की लिफत इसमें है विशेषकर विकृति रक्त तथा पित्त से उद्भूत रोगों पर इसका बहुत अच्छा असर पड़ता है।

(अ) वृषण वृद्धिपर इसका शास्त्रोक्त विधान यों है—लज्जावंती की जड़ (२ भाग) और गीध की विष्ठा (१ भाग) इन दोनों को एकत्र पीस कर लेप करने से कुरंड तथा योनि रोग अवश्य ही नष्ट होते हैं।

लज्जालुमूल गृध्रस्य विट्प्रलेपः प्रयोजितः।
कुरण्डं योनि रोगञ्च नाशयेद विकल्पतः॥

वंगसेन

(आ) मूत्रजन्य वृद्धि (Hybrocele) पर लज्जालू के पत्ते जल के साथ पीसकर प्रलेप करने से अपूर्व लाभ होता है।

(१७) सरफोंका (सरपुंखा म०–उन्हाली) उष्णवीर्य है तथा वात, कृमि, विष, रुधिर विकारादि नाशक है। सरफोंका दो प्रकार का होता है सफेद और लाल। लाल की अपेक्षा सफेद सरफोंका (जिसका फूल श्वेत होता है क्षुप पृथ्वीपर फैला हुआ होता है पत्ते लाल सरफोंके की अपेक्षा कुछ छोटे होते हैं और फलियों पर रुँआं नहीं होता) अधिक गुणवाला होता है तथा रसायन कार्य में यह श्रेयस्कर होता है। कहा भी है—

श्वेतायाः शरपुंखाया रक्ता तोऽह्यधिका गुणाः। नि० र०
श्वेता त्वेषा गुणाढ्या स्यात्प्रशस्ता च रसायने ॥ रा० नि०

वृषण वृद्धि पर यह अच्छा लाभ पहुंचाता है—इसके मूल का चूर्ण २ से ४ मा० तक केवल जल के साथ एक या दोनों समय पीने से लगभग १ मास में पूरा फायदा होता है।

(१८) सहिंजना—(सं०–सुभांजना, शिग्रु हि० म० शेवगा) गरम रूक्ष है कृमि, वात की वेदना, दाह, शोफ आदि निवारक है। इसके भी लाल और सफेद ऐसे विशेष कर (नीला भी कहीं २ होता है) दो भेद हैं सफेद फूल का सजना बहुतायत से पाया जाता है। गुण में प्रायः दोनों समान हैं। इनकी छाल और पत्तों में पीड़ा (और सूजन को दूर करने का अपूर्व गुण है। कहा भी है–"शिग्रु वल्कल पत्राणां स्वरसः परमार्ति हृत् ॥"

रा० नि०

कफ वात जन्य अंडवृद्धि तथा शोथ इसके निम्नोक्त प्रयोगों से शीघ्र नष्ट होती है।

(अ) सहिंजने की छाल को, घृत में पीसकर अंडवृद्धि पर प्रलेप करे। यथा—

शिग्रुत्वक्सर्षपैः पिष्टैः शोथः श्लेष्मानिलापहः । वंग०

(आ) सैजिने की छाल (२ भाग) और सरसों (१ भाग) जल के साथ पीसकर लेप करे । यथा—

"शिग्रुत्वक्सर्षपैर्लेपाच्छोथश्लेष्मानिलापहः"। भा० प्र०

(११) सैंधा निमक् सैंधानोंन और कसीस समभाग एकत्र खूब बारीक पीसकर (एरंड तैल के साथ) अंड पर लेप कर देवे तथा ऊपर से वस्त्र या लंगोट कस देवे । इस प्रकार कुछ दिनों के ही प्रयोग से अंडवृद्धि दूर हो जाती है जैसा कि कहा है—

सुपिष्टैरंडतैलेन कासीसं सैंधवं समम् ।
लिम्पेत् तेनां बराबद्धं कुरंडः क्षीयते क्रमात् ॥ हि० वैद्यक

अथवा—सेंधानमक का चूर्ण घी में पकाकर और उसमें वच का चूर्ण डालकर केवल सात दिन तक लेप करने से अंडवृद्धि शांत हो जाती है । प्रमाण के लिये देखो ऊपर नं० १२ ।

अथवा—सेंधानमक १ छटांक भेड़ के बाल १ छटांक और गाय का घी पुराना १ पाव इन तीनों को एकत्र कर तांबे के वर्तन में प्रति दिन धूप में रखकर तांबे के या

पत्थर के बच्चे में खूब घिसना चाहिये। फिर उसी घृत को वस्त्र में छान लेवे उसमें जो कुछ रोम निकले उनको फेंक देवे। इस घृत को प्रति दिन प्रातः और संध्या के समय लगाने से अंडवृद्धि रोग में बहुतलाभ होता है। यह प्रयोग 'वैद्य' से लिया गया है और हमारा परीक्षित है।

(२०) हरड़ (हरीतकी) इसके गुणोंसे सब कोई परिचित है।

(अ) बाल हरीतकी का चूर्ण २ मा० श्वेत एरंडी के तैल में थोड़ा अधिक पका कर, बाद में थोड़ा सा गोमूत्र डालकर सबेरे सेवन करने से अंडवृद्धि दूर होती है।

अथवा—बड़े हरड़ का चूर्ण २ मासा केवल गोमूत्र के साथ पीने से भी लाभ होता है।

अथवा—हरड़ २ भाग बहेड़ा १ भाग और अंवरकटी (आमला सूखा) १ भाग त्रिफले का चूर्ण २ मासा सबेरे और शाम पाव भर गाय के दूध के साथ सेवन करे।

(आ) पारा गन्धक समान भाग लेकर कजली करे। और दोनों के बराबर स्वर्णमाक्षिक लेकर घृतक्ष कर हरड़

के काढ़े में तीन दिन खरल करे फिर एक दिन एरंडी के तैल में खरल करे यह वृद्धि नाशन रस सिद्ध है। अंडवृद्धि का काल है, यथा—

रस गंधौ समौ ताभ्यां द्विगुणं हेम माक्षिकम्।
पथ्या रसेन त्रिदिनं रबु तैलेन वासरम्॥
मर्दितंसिद्धि मायाति रसेन्द्रो वृद्धि नाशनः॥ नि० र०

इसकी सेवन विधि—उपरोक्त रस १ रत्ती हरड़ का चूर्ण दो मासा में मिलाकर सवेरे सेवन करे अथवा यह रस १ रत्ती खिरेंटी के तैल के साथ या चने के काढ़े या हरड़ और जवाखार के चूर्ण के साथ या एरंड के तैल के साथ सेवन करे।

हम ऊपर सर्व सामान्य अण्डवृद्धि पर यथामति अनुभूत सरल प्रयोग बतला चुके हैं। अब नीचे कुछ दोषजवृद्धि, मूत्र-जन्यवृद्धि, आंत्रवृद्धि और ब्रध्न पर सरल योग लिखकर इस चढ़े हुए लेख को समाप्त करेंगे।

वातज वृद्धि पर ऊपर दिये हुए योग नं० १, ४, ११ और १५ बहुत ही फायदेमन्द हैं।

कफ वृद्धि पर—(१) गोमूत्र में उष्णवीर्य अर्थात् गर्म औषधियों को पीसकर लेप करे दारु हल्दी का काढ़ा गोमूत्र डाल कर सेवन करे यथा प्रमाण—

कफ वृद्धि मूत्र पिष्टैरुष्णवीर्यैः प्रलेपनम् ।
पातव्यो मूत्र संयुक्तः कषायः पीत दारुणः ७ वृ० नि० र० ॥

(२) त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपल) और त्रिफला का क्वाथ बनाकर, उसमें जवाखार तथा सेंधानमक मिला पान करने से कफ की वृद्धि नष्ट होती है । यह विरेचन कफ जन्य वृद्धि को दूर करने में श्रेष्ठ है । यथा—

त्रिकुटा त्रिफला क्वाथं सक्षार लवणं पिबेत् ।
विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफ वृद्धि विनाशनम् ॥ भा० प्र० ॥

(३) कफ वृद्धि के नाशार्थ अ० यो० माला अंक ६ पृष्ठ ११ में आक और इन्द्रायन के प्रयोग भी उत्तम हैं ।

नोट—कफ की वृद्धि में कटु, तीक्ष्ण और उष्ण औषधियों का प्रलेप, रूक्ष द्रव्यों द्वारा स्वेद परिषेक तथा उपनाह ये सब उष्ण उपचार करना ठीक होता है । जैसा कि कहा हुआ है ।

लेपनः कटुतीक्ष्णोष्णः स्वेदन रूक्षमेव च ।
परिषकोपनाहौ च सर्व मुष्ण मिहेष्यते ॥ बंगसेन ॥

कफ वृद्धि के लिये ये दो उष्ण प्रलेप और लिखे देते हैं। ये हमारे कई बार के अनुभूत हैं—

अ—बच और राई जल के साथ सिल पर पीस कर आग पर गर्म कर लेवे फिर सुखोष्ण (सुहाता हुआ) वृषण पर लेप कर देवे।

(आ) एरण्डबीज, पुनर्नवा, तिल और जव इनका महीन चूर्ण कांजी के साथ, कुछ गर्म कर कफ वृद्धि पर लेपकर देवे।

पित्त जन्य वृद्धि जो चिकित्सा शास्त्र में पित्त ग्रन्थि की कही है वही चिकित्सा यथा योग्य विचार पूर्वक पित्त वृद्धि की करनी चाहिये। उदाहरणार्थ—

(१) जोंक लगाकर विकृत रक्त को निकलवा डालने से पित्त सम्बन्धी वृद्धि नष्ट होती है। अथवा लाल चन्दन, मुरेठी कमल, खस और नीला कमल इनको दूध में पीसकर लेप करने से पित्त वृद्धि सूजन, एवं दाह की पीड़ा शांत हो जाती है यथा प्रमाण—

पित्त ग्रन्थि क्रमेणैव पित्त वृद्धि मुपाचरेत्।
जलौकाभि र्हरेद्रक्तं वृद्धौ पित्त समुद्भवे॥
चन्दनं मधुकं पद्मं मुशीरं नील मुत्पलम्।
क्षीर पिष्टं प्रलेपोयं दाहशोथ रुजापहः॥ (भा० प्र०)

(२) पंचक्षीरी वृक्षों (बड़ गूलर, पीपल, वेलिया पीपल और पारिस पीपल) की छाल सम भाग निकाल लेवें उन्हें गीली अवस्था में ही सिल पर कुछ थोड़े जल के साथ पीस कर कल्क (चटनी) कर डाले। तदनंतर उस कल्क में थोड़ा घी (गाय का हो तो बहुत अच्छा) मिलाकर प्रलेप करने से अच्छा फायदा होता है।

उक्त लेप लगाने के पूर्व पंचक्षीरी वृक्षों की छाल को जल में औंटाकर इस क्वाथ को तैसे ही रात भर ओस में रख देवे सवेरे मल छान कर जल का वृषण पर सिंचन करे। अच्छी तरह उसी जल से वृषणों को धोने के पश्चात् उक्त प्रलेप को लगाने से शीघ्र फायदा होता है। यह प्रयोग भी शास्त्रोक्त ही है।

पंच वल्कल कल्केन सघृतेन प्रलेपनम्।

एषामेव कषायेण शीतेन परिषेचनम्॥ वंगसेन॥

"पानं वापि कषायस्यपित्त वृद्धौ प्रशस्यते" इस पाठांतर के अनुसार कोई २ वैद्य पंचक्षीरी-वल्कल का क्वाथ रोगी को पिलाते भी हैं और अच्छा लाभ उठाते हैं।

नोट—पित्तज अंड वृद्धि में शीतल जलमें गोता मारना, शीतल द्रव्यों का सेवन करे तथा चन्दन, कपूर इत्यादि शीतल पदार्थों का लेप करे। यथा हारीते—

शीततोयावगाहो वा शीत संसेचनं तथा।
शीत शीतैश्च लेपश्च पित्तमुष्के प्रशस्यते ॥

रक्तज वृद्धि पर—बार २ जौंकें लगा के विकृत रक्त को निकाले शीतल लेप करे तथा वह पके नहीं ऐसा प्रयत्न करे।

निशोथ के काढ़े में मिश्री और शहद मिलाकर दिन में तीन बार पानी चाहिये। यदि रक्तज वृद्धि आम या पक गांठ के समान हो तो पित्तज ग्रन्थि पर जो शास्त्रोक्त प्रयोग हैं वे करें एवं पित्तज वृद्धि में कथित चिकित्सा। भी इसमें प्रशस्त है। यथा—

मुहुर्मुहु र्जलौकाभिः शोणितजं रक्तजे हरेत्।
पिबेद्विरेचनं वापि शर्करा क्षौद्र संयुतम् ॥
शीतमालेपनं शस्तं सर्वं पित्त हरं तथा।
पित्त वृद्धि क्रमं कुर्यादामे पक्वे च रक्तजे ॥ भा० प्र० ॥

(१) कफ वात वृद्धि पर— त्रिफले के काढ़े में गोमूत्र डालकर नित्य सवेरे पान करे और पथ्य से रहे। यथा प्रमाण—

त्रिफला क्वाथ गोमूत्रं पिबेत्प्रातर तन्द्रितः।
कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृषणोद्भवम् ॥ वंग ॥

(२) सहिजने की छाल को घृत में पीसकर प्रलेप करने से कफ वात की वृद्धि दूर होती है। यथा—

शिग्रुत्वक्छर्दिषैः पिष्टैः शोथः श्लेष्मानिलापहः ॥ वंग ॥

(३) हर्ड़ को गोमूत्र में पकाकर फिर उसको तैल (रेंडी) में भूनकर सेंधानमक मिलाकर नित्य सवेरे सेवन करे।

यथा—हरीतकीं मूत्र सिद्धां सतैल लवणान्विताम्।
प्रातः प्रातश्च सेवेत कफ वातामया पहाम् ॥ वंग० ॥

(४) त्रिकुटा, पीपलामूल, देवदारु और त्रिफला इनका क्वाथ बना उसमें जवाखार तीनों लवण डालकर पान करे। इस प्रयोग के सेवन से यदि वृद्धि नवीन हो तो शीघ्र ही फायदा होता है जीर्ण वृद्धि पर तीन मास तक इसका सेवन करना चाहिये अवश्य फायदा होता है। यह प्रयोग भी वंगसेन का है।

यथा—त्र्यूषणं पिप्पली मूलं देवदारु फल त्रिकम्।
कषायं पाचयेत्तेषां सक्षार लवण त्रयम् ॥
त्रिभिर्मासैः प्रशाम्येत वृद्धिर्वातकफात्मजा ॥

नोट—यदि कफ वात के कारण वृषण में तीव्र शूल हो तो खजूरों को लेकर बीजा निकालकर सिल पर थोड़े जल के साथ खूब पीसे। जब मक्खन के समान हो जाय तब उसमें दली

का चूना (एक पाव खजूर कल्क में चूना १ मासा) मिलाकर खूब घोंटे। जब एक दिल हो जाय तब एरंडी के पत्ते पर उस चूर्ण मिश्रित कल्क को फैलाकर तथा धीरे से उठाकर वृषण पर लपेट कर किसी स्वच्छ वस्त्र से बांध देवे। इसके बांधने से वृषणान्तर्गत शूल (चिलक) सूजन तथा अन्य कफ वात जन्य विकार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। यदि वृद्धि कई वर्षों की हो तो कुछ दिन बांधने से और यदि नवीन हो तो तीसरी बार बांधने से अवश्य लाभ होता है।

मेदजन्य वृद्धि पर—यदि अंडवृद्धि मेद के कारण हुई हो तो अण्डकोषों को स्वेदित कर (वफारा देकर) सुरसादि (निर्गुन्डी इत्यादि) औषधियों का लेप करे। तथा शिरोविरेचन द्रव्यों (पिप्पली विडङ्गापामार्ग शिग्रु सिद्धार्थक शिरीष मरिच करवीर बिम्बीगिरि कर्णिकादीनि) को गोमूत्र में पीस कुछ गरम कर सुहाता २ प्रलेप करे।

अथवा ÷ सुरसादिगण की समस्त औषधियों को (इस गण में से यथा शक्ति जो द्रव्य प्राप्त हो जायं उन्हीं को) गोमूत्र के साथ पीसकर तथा गरम कर सुहाता २ प्रलेप करने से मेदजन्य वृद्धि का नाम नहीं रहता।

÷ सुरसादिगण— सुरसयुग फणिज्झं कालमाला विडङ्गं।

यथा प्रमाणः—

छिन्नं मेदः समुत्पन्नं लेपयेत्सुरसादिना।
शिरो विरेचन द्रव्यः सुखोष्णैर्मूत्र संयुतैः॥ भा० प्र०॥

मूत्रज वृद्धि—(१) नोट—प्रथम बफारा देकर फिर वस्त्र से लपेट देवे। थोड़ी देर बाद अण्डकोष की सीवन को एक तरफ नीचे के अंग में ब्रीही मुख यन्त्र से (Teocor ट्यूकर) बेध करे। यह बेधन क्रिया तब करनी चाहिये जब वृद्धि अण्ड की गोली तक पहुंच गई हो। अन्यथा वातज वृद्धि के ऊपर कहे हुये उपचारों को करे। अग्नि से दाग देना भी हितकारी है। यथा—

संस्वेद्य मूत्र प्रभवं वस्त्र पट्टेन वेष्टितम्।
सीवन्याः सव्य तोधस्ताद्विध्ये द्व्रीहि मुखेन वै॥

सुमुख शूर्पकर्णी कट्फलं कासमर्दः॥
क्षवक खरपुष्पि भार्ङ्गी कासुका काकमाची।
कुलहल विषमुष्टी भूस्तृणो भूतकेशी॥

अर्थ—दोनो तुलसी, मिरच काली, अजवला, वायविडंग, मरुआ, मूशाकर्णी, कायफल, कसौंदी, नकछिकनी, तुंबरपत्रिका भारङ्गी, रक्तमंजरी, कोह, अलंबुसा, बकायन, अतिछत्रा सुगंध और जटामासी ये सब सुरसादिगण के द्रव्य हैं।

शुष्क कोशमगाच्छलया सपङ्कवृद्धौ [illegible] ।

वात वृद्धि क्रमं कुर्यान्मूत्रस्तज्ञानिनाहित: ॥ वंगसेन ॥

(२) वृषणान्तर्गत जल को सुख पूर्व बाहर निकालने का सरल उपाय—इमली की पत्ती दो मुट्ठी भर लाकर किसी मिट्टी के पात्र में रख इसी डूब जावें इतना गोमूत्र डालकर आग पर धर देवे। जब गोमूत्र जल जावे पुनः उतना ही डालकर औटावे इस प्रकार तीन बार औटाकर तथा गरम २ पत्तियों को निकाल किसी वस्त्र में धरकर सुहाता २ वृषणों पर बांध देवे ऊपर से लंगोट कस देवे। इस प्रकार ७-१४ या २१ दिन बांधने से कठिन से कठिन मूत्रज वृद्धि पर का जल निकलकर वृषण पूर्ववत नरम हो जाते हैं।

यदि वृद्धि बहुत भारी कद्दू के समान होगई हो तो उपरोक्त रीति से गोमूत्र औटाते समय जो वाष्प निकलती है उस पर वृषणों को धरने से एवं उसका बफारा लेकर वे ही पत्ते यथोक्त प्रकार से बांध देवे सब पानी निकल जावेगा। वृषण पर किसी प्रकार का अहित कर परिणाम न होगा बगैर सरल क्रिया के हो कुछ भी ख़र्च न करते हुये रोग दुरस्त हो जावेगा।

(३) करञ्ज के बीजों को या हरे २ पत्तों को सिल पर पीसकर महीन कल्क बना लेवे फिर उसमें अंदाज़ से एरण्डी का

तैल मिलाकर कढ़ाई में तल डाले। जब मरहम के समान गाढ़ा हो जाय तब उतार कर सुहाता २ प्रलेप करने से भी 'हायड्रोसील' में अपूर्व लाभ होता है।

अंत्रवृद्धि—(१) आंतें जब तक अण्डकोष में न उतरी हों तब तक वात वृद्धि की तरह चिकित्सा करें। यथा—

फलकोशम सम्प्राप्ते चिकित्सा वात वृद्धिवत्। वाग्भट्ट

(२) यदि रोगी को कब्जियत रहती हों तो उसकी जठराग्नि दीपन करने के लिये बस्तिकर्म का प्रयोग करे। तथा पान अभ्यंजन और वस्तिकर्म के द्वारा नारायण तैल का प्रयोग करे

अंत्र वृद्धिमदीप्ताग्नेर्वस्तिभिः समुपाचरेत्।
तैलं नारायणं योज्यं पानाभ्यंजन वस्तिभिः॥

अण्डकोषों में आतें उतर आई हों तो निम्नोक्त उपचार करें:—

(३) गंधर्वहस्ततैल, अंत्रवृद्धि पर अच्छा काम देता है इसके बनाने की शास्त्रोक्त विधि यों है एरंड की जड़ ५ सेर सोंठ और जौ प्रत्येक एक २ आढ़क (१ आढक=२५६तो०) परिमाण लेकर एक द्रोण (१२ सेर ६४ तो०) जल में पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे

फिर उस क्वाथके समभाग दूध मिलाकर तथा एरंड तैल एक प्रस्थ (३४ तो०) एरंड जड़ का कल्क ४ पल (१६ तो०) एवं अदरख का कल्क १२ तो० इन सबको एकत्र कर यथा विधि से तैल सिद्ध कर लेवे। इसे ही गंधर्वहस्ततैल कहते हैं। इसको नियम पूर्वक नित्य शुद्ध होकर पान करे ऊपर से दूध या क्षीर सेवन करे।

(४) गोमूत्र योग—गोमूत्र १॥ से २ तो० में गूगल (१ से ३ मा०) अथवा एरंड तैल १ से १॥ तो० मिलाकर नित्य सवेरे पान करने से अंत्रवृद्धि का नाश होता है। यह योग वात की वृद्धि पर भी अच्छा काम करता है।

(५) रास्नादिक्वाथ द्वितीय (प्रथम रा० क्वाथ वात वृद्धि पर हम ऊपर कह आये हैं देखो पीछे पृष्ठ २१ देखो।

रास्ना, गिलोय, खिरेटी, मुलहटी, गोखरू और एरण्ड की जड़, इन को समभाग लेकर, यवकुट चूर्ण कर लेवे नित्य सवेरे २ से ४ तो० तक चूर्ण लेकर उसमें ३२ से ६४ तो० तक जल डाल कर, मन्दाग्नि से औटावे। जब ४ तो० या ८ तो० जल शेष रहे तब उतार के छानलेवे। फिर इस में अंडी का तैल १ या २ तो० डाल कर पान करने से (७ या १४ दिन तक) अवश्य अपूर्व लाभ होता है।

इसका प्रमाण—पाषाणभृता पलाशत्वग् गोक्षुरैरण्डजः शुभः ।

एरंड तैल संयुक्तो वृद्धिमन्त्र भवां जयेत् ॥

॥ शार्ङ्गधरः ॥

(६) करञ्ज के बीजों को सिल पर पीस कर, उसमें थोड़ा अंडी का तेल मिलावे। फिर इस मिश्रण को तम्बाखू के पत्ते पर गाढ़ा २ लेप कर वह पत्ता वृषण पर रात्रि के समय बांध देने से भी अंत्र वृद्धि में लाभ होता है।

(७) लाल कचनार के बीज, सोंठ, देवदारु, गेरू, कुंदरू इनको कांजी में पीसकर अंडकोश पर गरम २ प्रलेप करने से अंत्र वृद्धि दूर होती है; यथा—

लाक्षा कांचन का बीजं शुंठी दारुगैरिकम् ।

कुन्दरु कांजिकैर्लेप्यमुष्णमन्त्र विवर्द्धने ॥ योगचिन्तामणिः

(८) पीपल, जीरा, कूठ, बेर सुखाया हुआ, गोबर इन को कांजी में मिला कर लेप करने से भी उपरोक्त परिणाम होता है

यथा—पिप्पली जीरकं कुष्टं बदरं शुष्क गोमयम् ।

कांजिकेन प्रलेपोयमन्त्रवृद्धि विनाशनः ॥ वृ० नि० र० ॥

(९) बालकों की अन्त्रवृद्धि पर केवल पलाश की छाल का काढ़ा पिलाने से ही फायदा होता है। कहा भी है—

अन्त्रवृद्धि शमनाय किंशुकत्वक्कषायमपि पाययेच्छिशुम् ॥

॥ वैद्यमनोरमा ॥

(१) ब्रध्न या कुरण्ड चिकित्सा—हरड़ को गोमूत्र में औटाकर अण्डी के तैल में भूने, फिर इसका चूर्ण सेंधा नमक मिला कर गर्म जल के साथ पीने से बहुत दिनों का भी कुरण्ड दोष नष्ट होता है। यथा—

गोमूत्र सिद्धांस्तु तैल भृष्टां हरीतकी सैंधव चूर्ण युक्ताम्।

खादेन्नरः कोष्ण जलानुपानान्निहंति कुरंडमतीव वृद्धम् ॥

वृ० नि० र०

अथवा—हरड़ को अण्डी के तैल में भून कर, पीपल और सेंधा नमक मिलाकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्ण को यथा प्रमाण सेवन करने से ब्रध्नरोग दूर होता है। यथा—

भृष्टश्चैरंड तैलेन कल्कः पथ्या समुद्भवः।

कृष्णसैंधव संयुक्तो ब्रध्नरोग हरः परः ॥ चक्र० ॥

नोट—ब्रध्न और कुरण्ड के विषय में पृ० १६ देखो।

(२) शंबूकादि लेप—गौ का घी छोटे २ शङ्खों में घोंघों में भर सात दिन तक धूप में रख देवे। फिर सब घी एकत्र कर, उस में अन्दाज से घृत का चौथा हिस्सा सेंधा नमक मिला कर कुरण्ड पर लेप करें। अवश्य ही कुरण्ड का नाश होता है।

यथोक्तं—शंबूकोदर निहितं गव्यं सप्ताह मातपे सर्पिः ।
स्थितमपि हंति कुरंड सैंधव चूर्णान्वितं लेपात् ॥ ग्र० र० ॥

(३) सैंधानमक और घी समभाग एकत्र मिला; किसी चौड़े तांबे के पात्र में धर कर, धूप में घिसने से; जो मल निकले उसे ग्रहण कर कुरण्ड पर दिन रात लगाने से अत्यंत वृद्धि को प्राप्त हुआ भी कुरंड शीघ्र आरोग्य हो ।

(४) भारङ्गी जड़ को जल में पीस कर प्रलेप नेसेर कुरंड, गण्डमाला और वृद्धि रोग दूर होते हैं । यथा—

यथाम्बुना सुसंपिष्टं मूलं भार्ग्याः प्रलेपनात् ।
कुरण्डं गण्डमालांच हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ वङ्ग० ॥

(५) गोखरू, सैंधानमक, सोंठ, नागरमोथा, देवदारु बायविडङ्ग, पाषाणभेद और लोध्र इन आठद्रव्योंका महीन चूर्ण कर (सब द्रव्य सम भाग लेवे) नित्य सवेरे दो मासा चूर्ण (बालकों को आधा मासा या १ मा०) घृत में मिला कर सेवन करने से वात जन्य ब्रध्नदूर होता है । प्रमाण—

श्वदंष्ट्रा सिन्धु विश्वाब्द दारु कृमिहराश्मभित् ।
लोध्रचूर्णं घृतेनाद्या द्वात ब्रध्न हरं परम् ॥ वङ्ग० ॥

अब वृद्धि सम्बन्धी कुछ विशेष महत्व का बातों का विचार कर्तव्य है।

नोट नं० १—पथ्यापथ्य—रेचन, वमन, वस्तिकर्म, फस्त-खुलाना, स्वेदन, प्रलेप, लँगोट पहिने रहना, गरम जल से स्नान करना (किन्तु सिर ठंडे जल से धोना) औटाया हुआ ठण्डा जल अथवा गरम जल ही दोष बलानुसार पान कराना। लाल चावलों का भात, मूँग, मसूर या अरहर की दाल, गेहूं की रोटी मटकी या हांडी में धरा हुआ घृत, छाछ, तांबूल और शहद का सेवन करना। सहजने की फली, परवल, पुनर्नवा, जिमीकन्द, आलू, बेंगन, गाजर और लहसुन इतने सब आहार विहार पथ्य कारी है।

नये चावलों का भात, उरद पिट्ठी के पदार्थ, मिठाई आदि का सेवन, पका केला, अनूपदेश के पशु पक्षियों का मांस, दही, दूध, पोई का साग, अजीर्ण रहने पर भी भोजन, गरिष्ट (भारी या जड) पदार्थों का भोजन, दिवा निद्रा, मल, मूत्र और वीर्य के वेग को रोकना, तैल की मालिश, हाथी, घोड़े पर बैठना अति व्यायाम, मैथुन, उपवास, नित्य स्नान शीतल जल पान इत्यादि अनिष्टकारक हैं। निदानोक्त आहार विहार का भी त्याग करना चाहिये।

नोट नं० २—फुटकल विशेष प्रयोग—

(१) जटामांसी, कूट, पत्रज, इलायची, रास्ना, ककड़ा· सिंगी, चित्रक, वायविडङ्ग, असगंध, शिलाजीत, कुटकी, सेंधा नमक तगर, कूड़ा, और अतास ये सब एक २ तोला लेकर थोड़े जल के साथ सिल पर पीस कल्क कर लेवे फिर इस कल्क में ६० तोला घी डालकर मन्दाग्नि से पकावे बाद में उतार कर उ· समें अडूसा, गोरखमुंडी, अंड, नींब और कटेरी इनके पत्तों का रस ६४ तो० दूध ६४ तो० डालकर पुनः मन्दाग्नि पर औटाकर घृत सिद्ध कर लेवे इस घृत के सेवन से हर प्रकार की अंडवृद्धि नष्ट होती है यह योग निघंटु रत्नाकरका है इसका नाम मांस्यादि घृत है।

(२) पारा गंधक समान भाग लेकर दोनों के बराबर स्वर्ण माक्षिक इन तीनों को एकत्र कर हरड़के काढ़े में तीन दिन खरल करे फिर अंडी के तैल में तीन दिन खरल करे। यह 'वृद्धनाशन रस' सिद्ध हो गया है। कहा है—

रसगंधौसमौताभ्यां द्विगुणं हेम माक्षिकम्।
पथ्यारसेनत्रिदिनं रुबुतैलेन वासरम्॥
मर्दितं सिद्ध मायाति रसेन्द्रो वृद्धि नाशनः॥
॥ नि० रत्नाकर॥

इस 'वृद्धि नाशन रस की मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक है। अनुपान चने का क्षार अथवा हरड़ा और नवसादर के चूर्ण के साथ अथवा केवल अंडी के तैल के साथ।

(४) हाथी के गोबर में इन्द्रायण की जड और सेंधानमक मिला थोड़े कड़वे या अंडी के तैल में युक्त करके गर्म करके पट्टी बांध लो रहे इससे बाज वक्त पूरा फायदा होते नज़र आया है। यह प्रयोग पं० श्रीनिवास त्रिपाठी वैद्यराज जी का है।

(४) ग्लीसरीन और विलाडोना समभाग एक ही में मिला कर रुई की फुरहरी से अंडकोषों पर चुपड देवे। एक ही बार लगाते ही लाभ होगा। दो तीन रोज में अंडकोष अपनी असली दशा में पहुंच जायँगे दवा लगाने से कोई कष्ट जलन आदि नहीं होती। दिन में तीन बार दवा लगानी चाहिये यह प्रयोग श्रीयुत गंगाप्रसाद शर्मा वैद्यशास्त्री का अनुभूत है।

(५) सुअर की चर्बी आध पाव आमाहल्दी २ तो० फिट-करी २ तो० इन दोनों को बारीक पीसकर एक कागज पर चर्बी के साथ गाढ़ा लेप करदे फिर फिटकरी और आमाहल्दीको चर्बी के ऊपर थोड़ी २ बुरक दे कुछ गर्म करके अंडकोष पर बांध देवे यह औषधि चार रोज़ के लिये है पूरे फायदे के लिये यह एक

हफ्ता सेवन करनी चाहिये यह प्रयोग श्री वैद्य पुरुषोत्तमलाल चतुर्वेदी का शतशोऽनुभूत है।

नोट नं० ३—अंत्रवृद्धि Hernin सम्बन्धी पश्चात्य उपचार जिसे अंत्रवृद्धि हुई हो उसे चाहियेकि आतें नीचे न सरकने पावे एतदर्थ दवाने वाला पट्टा (Truss ट्रस) का उपयोग करे। ये पट्टे अंत्रवृद्धि के स्थानानुसार भिन्न २ प्रकार के होते हैं। इन पट्टो के व्यवहार में मुख्य बात इतनी ही है कि वे ढोले न हों उनका दबाव इतना जोर का होना चाहिये कि अन्तः प्रविष्ट अंतड़ियां बाहर न सरकने पावें।

नाभ्यंत्र वृद्धि (Umdilicul Hernia अम्बिलायकर हर्नियां) यह विकार प्रायः छोटे बच्चोंमें विशेष देखने में आता है। इसे भी आयुर्वेद में शायद कुरंड रोग कहा है—"यः पित्तदोषेण कुरंड रोगो भवेच्छिशोर्दक्षिणमुष्कदेशे" (इसकी चिकित्सा हम ऊपर बतला आये हैं) यह रोग मुष्कदेश अर्थात् अंडकोष में होता है ऐसा जो कहा उपलक्षण मात्र है नाभी के पास भी हो सकता है अर्थात् जोर कर स्नायु की निर्बलावस्था में नाभी प्रदेश में ऊपर को उभर आती है। जिसके कारण नाभी प्रदेश फूला हुआ बड़ा दिखलाई पड़ता है उस स्थान पर असह्य वेदना होती है। इसके शमनार्थ इस प्रकार उपाय करना चाहिये—धारे

२ हलके हाथ से अंतड़ियों को अन्दर प्रविष्ट कर तत्काल कपास में गूढ़कर रक्खा हुआ एक बड़ा पैसा (आधा आना) अथवा उसी के समान गोल तथा जाडी कोई दूसरी वस्तु नाभी के छिद्र पर धर कर ऊपर से ऊनी वस्त्र का पट बँध उदर के आस पास कस कर बांध देवे।

वक्षणांत्रवृद्धि (Inguinal Hernia) यह विशेषकर स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को ही अधिक होता है। इसे ही अपने यहां ब्रध्न कहा गया है। ऊर्वन्त्रवृद्धि (Femoral Hernia) यह उरु या जानु के ऊपरी भाग में होता है यह पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियो में अधिक पाया जाता है और एक अवरुद्ध अंत्रवृद्धि (Straugnla teb Hernia) यह अंत्रवृद्धि की बड एक भयंकर तीसरी अवस्था है जिसकी उपेक्षा करने से मरण अवश्यभावी होता है इसका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं (देखो अंत्रवृद्धि तीसरा प्रकार पृष्ठ १२ में देखो इन सब अंत्रवृद्धियों में पश्चात्य वैद्य यथा शक्ति अंतडियों को वाह्योपचार द्वारा अंदर यथा स्थान प्रवेश कराने का प्रयत्न करते हैं और जब देखते हैं कि उसका अंदर जाना अशक्य है तब शस्त्र क्रिया (oberation) जो कि प्रायः कष्टसाध्य ही होता है, करते हैं।

डा० करुणाशंकर मिश्र (फतेहगढ़) वृटी दर्पण में लिखते हैं—कि अंत्रवृद्धि पर मेरी तुच्छ सम्मत्यानुसार जहां तक हो सके वहां तक चिकित्सा खिलानेकी ही की जावे क्योंकि अपरेशन प्रायः खतरनाक पाये गये हैं, जैसा भैषज्य रत्नावलीके अंत्ररोगा धिकार के १२ वें श्लोक में भी कहा है—"यहां शस्त्र किया व-हुधा प्राण ही नाश कर देती है हजारों रोगियों में किसी २ को आराम होता है ।" औषधि खिलाने से भी कितने ही रोगी आ राम हो चुके हैं यह मेरे अनुभव में आ चुका है। निम्न लिखित योग अनुभुत है।

अच्छी पोली हड़ की बकली आधी छटांक चिरयता नया आधी छटांक, धनियां आधी छटांक, लौंग फूलदार सवा पांच तोला, मिश्री कूंजेकी सफेद ३ छटांक २ तो० १ मा० सबचीजों को कूटकर तारोंकी बारीक एलक (चलनी) से छान लेवे और उसमें असली सोनामक्खी (स्वर्णमाक्षिक केले की जड़के रस में निर्धूम आगमें तपा २ लाल करके २१ बार बुझाई हुई और खुश्क सुरमे के माफिक बारीक पिसी हुई शुद्ध) एक छटांक उस चूर्ण में अच्छी तरहसे मिला देवे फिर इस चूर्णमें असली शहद (आंख के सामने प्राप्त किया हुआ) ३ छटांक २ तो० ६ मा० मिला

ढंके, और कांच के बर्तन या अमृतवान में रख छोड़े और प्रातः सायं दस २ मा० खावे। इसी प्रकार से बना बना कर कम से कम ४० दिन तक खाना चाहिये। जहां कि ऐसे रोगी आपरेशन से मर चुके थे, ईश्वर कृपा से वहां आज तक ११ रोगी तो मेरे हाथ से अच्छे हो चुके हैं। ×

×इसे आयुर्वेदिक चिकित्सा का प्रभाव कहें या केवल ईश्वर की कृपा? हमने भी ईश कृपा से कई रोगियों को अच्छा किया है किन्तु किसी एक ही औषधि से नहीं। दोष, काल, देश बलानुसार हमें भिन्न २ प्रयोगों का आश्रय लेना पड़ा है जिनमें से प्रायः सब प्रयोग हम ऊपर बतला चुके हैं। तथापि डाक्टर साहब आप विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। जो आप केवल इसी एक प्रयोग के द्वारा कई मृतप्रायः रोगियों को दुरुस्त करते हैं। क्या इस प्रयोग के साथ ही साथ आप कोई वाह्योपचार प्रलेपादि नहीं करते? यदि न करते हों तो यह आपका एक बड़ा अपूर्व शोध कहा जा सकता है। बडे आनन्द की बात है जो आपने इसे प्रकट कर दिया है। हम भी प्रसंगानुसार इसकी अवश्य परीक्षा करेंगे। लेखक—

आगे डाक्टर साहब ने कुछ पथ्यापथ्य बत लाया है, उस में कोई नई बात नहीं है। ऊपर के नोट नं० १ में उसका समा-वेश होचुका है।

नोट नं० ४—वृषण शोथ—यदि वृषणों में किसी कारण वश केवल शोथ या सूजन हो आई हो तो—

(१) वच और सरसों के कल्क का प्रलेप करने से दूर होता है। जैसा कि कहा है—"वचा सर्षप कल्केन प्रलेपः शोथ नाशनः।"

(२) त्रिफला का गोमूत्र में काढ़ा करके पीवे अथवा काढ़ा न करके केवल त्रिफला चूर्ण २ से ४ मासा तक गोमूत्र के साथ नित्य प्रातः सेवन करने से भी वृषण सूजन दूर होजा-ती है।

नोट नं० ५—अण्डपतन-कभी २ स्नायु शैथिल्य के कारण अरंड कोष ढीला पड़जाता है, उस समय वृषण स्थित गोलियों के बोझा से वृषण किसी घड़ी के पेंडुलम केसमान लटक पड़ता है। ऐसे आदमी को चलने फिरने में बड़ी तक लीफ होती है। इसे फोतों का उतर जाना कहते हैं। इसके लिये निम्न प्रयोग काममें लावे।

(१) गनिआरी (अग्निमंथ जिसे मरेठो में 'टांकल' कहते हैं) के पत्ते सिल पर बांट कर तथा कुछ गरम कर अण्डकोष पर बांध देवे । अथवा—

(२) छुईमुई (लज्जालु) के पत्ते बांटकर उपरोक्तानुसार बांध देवे ।

(३) किंकिणी (व्याघ्री—इसके वृक्ष वन और पर्वतों पर होते हैं । इसके वृक्ष पर वेरी के समान बांके कांटे होते हैं, फल, लम्बे, गोल और बीच में गांठदार होते हैं, फल का मध्य भाग हिंगोट के समान होता है) के पत्तों का स्वरस ४ पैसे भर, उसमें कालीमिर्च ४ माला बांटकर खावे ।

उक्त तीनों प्रयोग 'पदेजी' के हैं ।

॥ इत्यलमतिविस्तरेण ॥

वैद्यकशब्द कोषः

वैद्यकशब्दकोश-यह अकारादि क्रमासे संस्कृत दवाइयों के नाम सरल हिन्दी भाषा में बतलाने के लिये प्रकाशित किया गया है अब तक ऐसा शब्दकोष आयुर्वेदीय साहित्य में न था इसके सहारे मूल श्लोकों के अर्थ प्रत्येक थोड़ा पढ़ा लिखा (हिन्दी जानने वाला) झट लगा लेगा बड़े २ बिद्वान भी बाज २ समय बाज २ औषधि के नाम बिस्मृत होजाने पर घन्टों सरपच्ची करके अभीष्ट सिद्ध प्राप्त नहीं कर सकते थे अब इसके द्वारा शीघ्र पता पा सफल मनोरथ होंगे यह वैद्यकशब्द कोष बिषय से प्रेम रखने वाले हिन्दी के पढ़े लिखे मनुष्य से लेकर संस्कृत के आयुर्वेदीय बिद्यार्थियों एवं आयुर्वेदा ध्यापकोंके बड़े काम की चीज हुई है मूल्य सिर्फ ।) चार आना।

प्लीहा

इस पर सम्पादक ब्रह्मदेव जी शास्त्रीकाव्य तीर्थ अपने प्रसिद्ध पत्र ब्राह्मण सर्वस्व में लिखते हैं कि युक्त प्रांत में विशेषतः अन्य प्रांतों में भी प्लीहा रोग बहुत बढ़ रहा है इस पुस्तक में प्लीहा तिल्ली रोग में लक्षण निदान चिकित्सा का अच्छा वर्णन किया गया है पृष्ट संख्या ३० मूल्य ।) आना है।

व्रणोपचार पद्धति

इस पुस्तक में विद्रधि, व्रण; जहरवाद, नहरुआ; अग्नि से जलना; चोट लगने के घाव, विसर्प, गलगण्ड, कण्ठमाला; भगन्दर, ग्रन्थि, अर्बुद, पामारोग की अनुभूत चिकित्सा है। मू० ।=) आ०

राजयक्ष्मा

इस पुस्तक में राजरोग का बहुत उत्तम वर्णन है। द्वितीय संस्करण का मूल्य =) दो आना है।

दमा

(श्वास) मूल्य ।) चार आना इसके विषयमें लालारूपलाल जो वैश्य क्लर्क लोको सुपरिण्टेन्डेण्ट आफिस बनारस कैन्ट से लिखते हैं दमा के कारण मैंने समझ लिया था कि अब जीवन लीला समाप्त होने पर है परन्तु आपकी पुस्तक को लेकर उसके योगों (पृष्ठ २५ पर नं० ३ और पृष्ठ २६ पर नं० ६) से मेरा ६ वर्ष का पुराना दमा दूर हो मुझे जीवन मिला है आशा है कि समस्त जन लाभ उठा आपके श्रम को सफल करेंगे इसका भी दूसरा संस्करण है।

अर्शरोग चिकित्सा

लेखक—आयुर्वेद भूषण बाबू मनोहर दास रस्तोगी राज वैद्य प्रकाशक पं० विश्वम्भरदयालु जी वैद्यराज सम्पादक अनुभूत योग माला बरालोकपुर जिला इटावा मू० प्रति पुस्तक ॥)

इस पर हिन्दी साहित्य की प्रौढ़ पत्रिका "मनोरमा" की समालोचना जो संख्या १ सन् १९२४ के दिस- म्बर में योग्य सम्पादकों ने की है देखिये इस पुस्तक में बवासीर रोग की निरुक्त पूर्वरूप कारण और लक्षण शास्त्रीय रीति से उल्लेख है साध्यासाध्य की विवेचना उत्तम ढंग से की गई है चिकित्सा विस्तार प्रशंसनीय है अनेकानेक वैद्यराजों हकीमों प्रोफेसरों और डाक्टरों की दवाइयों का संग्रह कर लेखक ने कि- तने ही अनुभूत योग दिये हैं पुस्तक उपयोगी और वैद्यवरों के संग्रह करने के योग्य है। ८० पृष्ठ की पुस्तक का दाम ॥) आठ आना है यह दूसरा संस्करण है।

हरिधारित ग्रन्थरत्न

समस्त रोगों के उत्तम योग भाषा टीका सहित ।≈)

सिद्धप्रयोग

दूसरा भाग।

यह पुस्तक "सिद्धप्रयोग" प्रथम भाग नं० १ की तरह पर ही बनाई गई है इसमें १९२७ के परीक्षा में सिद्ध आये हुये योगों का संग्रह प्रथम के अनुसार ही श्लोक बद्ध और भाषा टीका युक्त किया गया है मूल्य सिर्फ ॥) आना है।

विन्ध्याचल महात्म्य

भाषा टीका सहित।

भगवती के भक्तों के पढ़ने और मनन करने के योग्य अलभ्य पुस्तक है विन्ध्यवासनी देवी की उत्पत्ति महिमा कार्य कुशलता पूजन, परिक्रमा साक्षात् दर्शन के उपाय विन्ध्यक्षेत्र की उत्कृष्टता महा पातकों के नाश का उपाय देवताओं के निवास स्थान का दिग्दर्शन आदि अनेक अद्भुत बातोंका उल्लेख है कहां तक लिखें बिना देखे इस ग्रन्थकी उपयोगिता कथन में नहीं आती एक बार जरूर २ देखियेगा। ३३६ पृष्ठ की पुस्तक का दाम १॥) रु० है।

पुस्त मिलनेका पता—

श्रीहरिहर औषधालय बरालोकपुर इटावा